‘ओरिएंटलिज्म’ और ‘कल्चर एंड इम्पीरियलिज्म’ जैसी असाधारण किताबों के लेखक एडवर्ड सईद कोलम्बिया विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर थे। ‘ओरिएंटलिज्म’ (1978) के प्रकाशन ने उन्हें उत्तर औपनिवेशिकता के प्रमुख सिद्धांतकार के रूप में दुनिया भर में पहचान दिलाई। इस किताब में सईद ने दावा किया कि ‘पूर्व’ कोई वस्तुगत यथार्थ नहीं है, बल्कि ‘पश्चिम’ ने अपने साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप इस छवि को गढ़ा और अपने अधीनस्थों पर थोप दिया। एडवर्ड सईद ने बौद्धिकों की सामाजिक भूमिका पर जोर दिया। वे फिलीस्तीनी जनता के दमन के खिलाफ आजीवन लड़ते रहे और इस आन्दोलन की सबसे सशक्त आवाज बने। सईद बार-बार याद किये जाते हैं अपनी जनपक्षधरता के लिये। उनके गुजरने पर इलन पपी ने कहा था ‘एडवर्ड रास्ता दिखाने वाले प्रकाश स्तंभ थे, हम जो फिलीस्तीनी संघर्ष से जुड़े हैं आज अनाथ हो गए’।

येरुसलम में जन्मे एडवर्ड सईद ता-उम्र अमेरिका में एक निवार्सित की जिंदगी बिताते रहे। अमेरिका न उनका घर बन सकता था, न बन पाया। फिलीस्तीन के संदर्भ में अमेरिका-इजरायल की नीतियों का विरोध करने के कारण उन्हें ‘आतंक का प्रोफेसर’ कहकर लांछित किया गया और फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन के तौर-तरीकों की आलोचना करने के लिये आन्दोलन के नेताओं ने उन्हें सीआइए का एजेंट कहा। ‘बेघर’ होने की यह पीड़ा सईद के लेखन में विन्यस्त है, उनकी संस्मरणात्मक पुस्तक का शीर्षक है ‘आउट ऑफ प्लेस’ और प्रस्तुत निबंध ‘रिफलेक्शन ऑन एक्जाइल’ की तो केन्द्रीय विषयवस्तु ही यही है। इस लेख का अनुवाद किया है वरिष्ठ आलोचक प्रो.रामकीर्ति शुक्ल ने। Ed - DebateOnline

निर्वासन चिंतन

- एडवर्ड सईद

चिंतन के एक विषय के रूप में निर्वासन जितना ही आकर्षक लगता है, अनुभव के स्तर पर यह उतना ही भयावह है। निर्वासन नाम है उस टूटन का जो किसी मनुष्य और उसकी जन्मभूमि, उसके अपने स्व और इस स्व के वास्तविक आश्रय के बीच घटित होता है। यह एक ऐसा घाव होता है जो कभी भी भर नहीं पाता, इसके अन्तर्तम में छिपी व्यथा से पार पाना असंभव होता है। यह बात सच है कि साहित्य और इतिहास में कई ऐसी कहानियाँ दर्ज हैं जिनमें निर्वासित व्यक्ति के साहसिक, किंचित रोमाण्टिक, गौरवपूर्ण, यहाँ तक कि विजयोल्लास से भरे कारनामों का उल्लेख है लेकिन ये सारी कहानियाँ विछोह की मारक पीड़ा पर विजय प्राप्त करने के प्रयासों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। निर्वासित व्यक्ति की सारी उपलब्धियाँ उस चीज की भरपाई नहीं कर सकतीं जिसे उसने हमेशा के लिये गँवा दिया है।

लेकिन यदि यथार्थ निर्वासन अपूरणीय क्षति की स्थिति का नाम है तब फिर आधुनिक संस्कृति के एक शक्तिशाली ही नहीं अपितु समृद्धिकारक मोटिफ के रूप में इसे इतनी आसानी से कैसे रूपांतरित कर लिया गया है? हमें ऐसा सोचने की आदत-सी पड़ गई है कि आधुनिक युग आध्यात्मिक स्तर पर क्षत-विक्षत और अलगावग्रस्त है; यह मानसिक उद्वेलन और विछोह का युग है। नीत्शे ने हमें परंपरा के भीतर असुविधा महसूस करना सिखाया है और फ्रायड के अनुसार जिसे हम पारिवारिक निकटता और स्नेह-सम्बंध कहते हैं वह सत्ता और

व्यभिचार-निषेध जनित आक्रोश का चिकना-चुपड़ा चेहरा मात्र है। आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का अधिकांश निर्वासितों, प्रवासियों और शरणार्थियों का दिया हुआ है। अमरीका में अकादमिक, बौद्धिक और सौन्दर्य-चिंतन आज जैसा और जितना है उसमें फासीवाद, साम्यवाद और विरोधियों का दमन और उनको बेदखल करने वाली अन्य शासन-व्यवस्थाओं द्वारा सताये गये लोगों का योगदान सर्वाधिक है। आलोचक जार्ज स्टाइनर ने तो एक बहुत ही समझदारी भरा सिद्धांत ही प्रस्तावित किया है जिसके अनुसार आधुनिक पाश्चात्य साहित्य की एक पूरी विधा ही क्षेत्रेतर (एक्स्ट्राटेरिटोरियल) बन गई है, अर्थात् एक ऐसा साहित्य जो निर्वासितों द्वारा निर्वासितों के बारे में लिखा गया है और यह साहित्य शरणार्थी युग का प्रतीक है। स्टाइनर लिखते हैं : यह उचित ही लगता है कि वे जो उस अर्द्ध-सभ्यता में कला सृजन करते हैं जिसने तमाम लोगों को बेघर कर दिया है स्वयं बेघर कवि और भाषाओं के बीच यात्रा करने वाले यायावर लोग हों। वे झक्की, एकांतप्रिय, अतीत-मोह से ग्रस्त, जान-बूझकर समय की मर्यादा को तोड़ने वाले होते हैं।

दूसरे युगों में निर्वासितों के पास इसी प्रकार की पार-सांस्कृतिक, पार-राष्ट्रीय कल्पना-दृष्टियाँ रही हैं, इसी तरह की निराशाओं और यातनाओं को उन्होंने भोगा था, उन्होंने इसी प्रकार ऐसे व्याख्यापरक, आलोचनायुक्त कर्म संपादित किये थे जिनकी प्रखर संपुष्टि इ.एच.कार द्वारा प्रस्तुत हरजेन के चारो ओर इकट्ठे हुये 18वीं सदी के रूसी बुद्धिजीवियों पर किये गये क्लासिक अध्ययन द रोमांटिक इग्जाइल्स नामक पुस्तक में मौजूद है। लेकिन पहले के युगों के निर्वासितों और हमारे अपने समय के निर्वासितों के बीच संख्या और स्तर का भेद है। आधुनिकतम हथियारों से लड़े गये युद्धों, साम्राज्यवाद और अधिनायकवादी शासकों की धर्म की सीमाओं को छूनेवाली महत्वाकांक्षाओं के चलते हमारा अपना युग शरणार्थियों, बेदखल लोगों और पारगमन करने वाले विशाल जनसमूहों का युग कहा जा सकता है।

इस प्रकार की विशाल, व्यक्ति-निरपेक्ष पृष्ठभूमि के तहत निर्वासित व्यक्ति से मानववाद की धारणा की सेवा की अपेक्षा नहीं की जा सकती। बीसवीं सदी के स्तर पर निर्वासन की व्याख्या मानववाद अथवा सौन्दर्यशास्त्र के पदों के भीतर नहीं की जा सकती है। अधिक से अधिक निर्वासन पर लिखा गया साहित्य उस यंत्रणा और नियति को वस्तुनिष्ठ रूप से प्रस्तुत करता है जिसे अधिकांश लोगों ने अपने जीवन में शायद ही महसूस किया होगा। लेकिन यह सोचना कि इस साहित्य में रचा-बसा निर्वासन का भाव कल्याणकारी मानववाद है वास्तव में निर्वासन से उपजी क्षत-विक्षत होने की अनुभूति, निर्वासन भोगने वालों पर इसके द्वारा लादे गये विलोपनों, इसे 'हमारे लिये लाभदायक' के रूप में समझने के प्रयासों के प्रति इसके विवश मौन का मजाक उड़ाना होगा। क्या यह सच नहीं है कि साहित्य में और उससे भी अधिक धर्म में निर्वासन के बारे में व्यक्त किये गये विचार निर्वासन की भयावहता को धूमिल कर देते हैं? क्या यह भी सच नहीं है कि निर्वासन अंतिम रूप से धर्मनिरपेक्ष और असह्य रूप से इतिहासजन्य होता है, कि यह मनुष्यों द्वारा दूसरे मनुष्यों पर थोप दिया जाता है और उन्हें परंपरा, परिवार और भूगोल से मिलने वाले जीवन-रस से वंचित कर दिया है?

निर्वासन को विषय बनाकर लिखी गई कविता पढ़ने के बजाय किसी निर्वासित कवि को देखने का मतलब होता है उस अप्रतिम गहनता को देखना जिसके साथ निर्वासन के विप्रतिषेधों को मूर्तरूप दिया जाता है और उन्हें भोगा जाता है। कई साल पहले मुझे समकालीन उर्दू कविता के महानतम कवि फैज अहमद फैज के साथ कुछ

समय बिताने का मौका मिला था। जियाउल हक की सैनिक सरकार ने उन्हें देश-निकाला दे दिया था और संकटों से जूझ रहे बेरूत में उन्होंने शरण ली थी। स्वाभाविक ही था कि उनके घनिष्टतम मित्रों में फिलिस्तीनी मूल के लोग थे लेकिन मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि फैज और उनके फिलिस्तीनी दोस्तों के बीच आत्मीयतापूर्ण संबंधों के बावजूद उनमें कुछ भी एक-दूसरे जैसा नहीं था - न भाषा, न काव्य-परंपरायें और न ही जीवन-इतिहास। केवल एक ही बार ऐसा हुआ जब फैज अपने विछोह-बोध को कुछ समय तक जीत पाये थे और वह तब हुआ जब उनके एक पाकिस्तानी मित्र, सह-निर्वासित उर्दू कवि इकबाल अहमद बेरूत में उनसे मिलने आये थे। एक दिन काफी रात गये हम तीनों बेरूत के एक साधारण से रेस्तरां में बैठे हुये थे जहाँ स्वयं फैज मेरी खातिर कविताओं का अनुवाद करते रहे लेकिन जैसे-जैसे रात गहराने लगी, अनुवाद की जरूरत ही नहीं रह गई। जो मैं देख रहा था, उसके अनुवाद की जरूरत नहीं थी : जो हो रहा था वह वास्तव में अवज्ञा और क्षति के माध्यम से घर वापसी का अभिनय था जैसा कि मानों दोनों कवि यह कह रहे हों, ''जिया, देखो, हम यहाँ हैं।'' जबकि असलियत यह थी कि जिया अपने घर में थे और इन दोनों निर्वासित कवियों की उत्सवी मुखरता को सुन ही नहीं सकते थे।

राशिद हुसैन फिलिस्तीनी थे। उन्होंने आधुनिक हिब्रू के महान कवि बिआलिक की कविताओं का अरबी में अनुवाद किया था। हुसैन बहुत ही आकर्षक वक्ता थे और 1948 के वर्षों में एक वक्ता और राष्ट्रभक्त के रूप में उनका कोई शानी नहीं था। पहले वे तेल-अबीब में हिब्रू भाषा के पत्रकार थे और नासिर के प्रखर समर्थक और अरबी राष्ट्रवाद के मुखर प्रवक्ता होने के बावजूद उन्होंने यहूदी और अरबी लेखकों के बीच संवाद को सफलतापूर्वक संभव बनाया था। लेकिन उनके ऊपर दबाव बढ़ रहा था और एक समय ऐसा आया जब यह दबाव असह्य हो गया और वे न्यूयार्क चले गये। उन्होंने एक यहूदी महिला से विवाह किया और संयुक्त राष्ट्र में फिलिस्तीनी मुक्ति-संगठन के कार्यालय में काम करने लगे लेकिन वहाँ वे अपने स्वच्छन्द और स्वप्नदर्शी विचारों के कारण अपने वरिष्ठों की आँख की किरकिरी बन गये। 1972 में वे अरब लौट आये लेकिन कुछ ही महीने बाद वे फिर अमरीका वापस चले गये। वे सीरिया और लेबनान तथा काहिरा में बेगाना महसूस करते थे। न्यूयार्क ने उन्हें शरण दी लेकिन साथ ही अनवरत शराबखोरी और बेकारी ने भी उन्हें शरण दी। उनका जीवन पूरी तरह से बिखर चुका था लेकिन मेहमाननवाजी में उस समय भी उनका कोई जवाब नहीं था। एक रात उन्होंने बहुत ज्यादा शराब पी ली और फिर बिस्तर पर लेट कर सिगरेट पीने लगे। बेहोशी में सिगरेट से उनके कमरे में आग लग गयी। इसी आग में वे तमाम आडियो कैसेट जल गये जिसमें उन्होंने कई कवियों के काव्य-पाठ को बंद कर रखा था। टेपों से निकलने वाले धुओं में उनकी साँस घुट गयी। उनके शव को इजरायल के छोटे से गाँव में दफनाने के लिये भेज दिया गया जहाँ उनके परिवार के लोग उस समय रह रहे थे।

फैज, इकबाल, हुसैन तथा अन्य निर्वासित कवियों-लेखकों की जीवन-चर्या ने निर्वासन की उस स्थिति को गरिमा प्रदान की है जिसका उपयोग गरिमा छीनने, लोगों से उनकी पहचान छीनने के लिये किया गया था। इन जीवन-चर्याओं के आधार पर अपने समय में राजनैतिक दण्ड की एक विधा के रूप में निर्वासन पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये आपको स्वयं निर्वासन के साहित्य द्वारा क्षेत्रांकित किये गये क्षेत्रों के बाहर पड़े हुये अनुभव के क्षेत्रों का क्षेत्रांकन करना पड़ेगा। आपको पहले ज्वायस और नबाकोव को एक ओर खिसका कर उन असंख्य जन-समूहों के बारे में सोचना पड़ेगा जिनके लिये संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई एजेन्सियाँ खोल रखी हैं। आपको उन

शरणार्थी किसानों के बारे में सोचना पड़ेगा जिन्हें अपने घरों को वापस जाने की कोई उम्मीद नहीं है, जिनके पास केवल राशन-कार्ड और एजेन्सी द्वारा दिये गए नंबर के अलावा कुछ भी नहीं है। पेरिस दुनिया भर के निर्वासितों के लिये मशहूर राजधानी-नगर हो सकता है लेकिन इसी के साथ यह वह शहर भी है जहाँ असंख्य अनाम स्त्री और पुरुषों ने अकेलेपन और पीड़ा के अनेक वर्ष गुजारे हैं - ये स्त्री और पुरुष विभिन्न नागरिकताओं और जातीय समूहों से जुड़े हैं - वियतनाम, अल्जीरियायी, काबोदियायी, लेबनानी, सेनेगलवासी, पेरूवासी आदि आपको काहिरा, बेरूत, मेडागास्कर, बैंकाक, मेक्सिको सिटी के बारे में भी सोचना पड़ेगा। अटलांटिक दुनिया से जैसे-जैसे आप आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे भयानक बर्बादी के क्षेत्रों में बढ़ोत्तरी होती जायेगी और बर्बादी की भयानक मार झेलने वालों की संख्या भी बढ़ती जायेगी। दिल दहला देनी वाली इस बर्बादी के शिकार कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनका नाम शरणार्थी-सूचियों में भी दर्ज नहीं है। वे अचानक गायब हो गये लोग हैं और उनका कोई कहने लायक इतिहास भी नहीं बचा है। भारत से निर्वासित मुसलमानों, अमरीका में रहने वाले हैती निवासियों अथवा ओसियाना में बिकिनियानी अथवा पूरे अरब विश्व में छितराये हुये फिलिस्तिीनियों के बारे में सोचने का मतलब होता है आत्मनिष्ठता द्वारा संभव किये जाने वाले छोटे-मोटे शरणस्थलों की छोड़कर आपको जन राजनीति के अमूर्तनों का पल्ला थामना पड़ेगा। समझौता-वार्ताओं, राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम, अपने घर-द्वार से हाथ-धोकर पैदल चलकर अथवा बसों में ठूँसकर दूसरे क्षेत्रों में रहने के लिये जाने को मजबूर लोग : ऐसे अनुभवों का परिणाम क्या होता है? क्या ये अनुभव स्पष्ट रूप से अथवा लगभग जान-बूझकर पहुँच से बाहर नहीं हो जाते?

अब हम राष्ट्रवाद और निर्वासन से इसके तात्विक जुड़ाव पर आते हैं। राष्ट्रवाद किसी स्थान, जनसमूह, किसी विरासत में और से जुड़े होने की उद्घोषणा होता है। यह भाषा, संस्कृति और परंपरा द्वारा सृजित किसी घर की संकल्पना का प्रमाणन होता है, और ऐसा करते हुये यह निर्वासन की संभावना अथवा आशंका को परे हटाता है, निर्वासन से उपजी क्षति से बचने के लिये लड़ता है। कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद और निर्वासन की अन्तरक्रीड़ा हीगेल द्वारा लक्षित स्वामी और सेवक की वह द्वन्द्वात्मकता है जिसमें दोनों में से प्रत्येक विरोधात्मकता से युक्त होता है। सभी राष्ट्रवाद अपने प्रारंभिक दौर में विछोह अथवा पार्थक्य की दशा से आगे विकसित होते हैं। अमरीकी स्वातंत्र्य के लिये, जर्मनी अथवा इटली के एकीकरण और अल्जीरिया की मुक्ति के लिये किये गये संघर्ष उन राष्ट्रीय समूहों द्वारा चलाये गये थे जिनसे वह जीवन-शैली छीन ली गयी थी जिसे वे अपना मानते आये थे और जिसे ऐसा होने की मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। उपलब्ध और विजयी राष्ट्रवाद पश्चदर्शी और भविष्यदर्शी दोनों विधियों से एक ऐसे इतिहास को न्यायोचित ठहराता है जिसे एक आख्यानात्मक रूप देने के लिये कुछ चुनी हुयी घटनाओं को संग्रथित करके निर्मित किया गया होता है; सभी राष्ट्रवादों के संस्थापक-जनक होते हैं, उनके आधारभूत अर्द्ध-धार्मिक ग्रंथ होते हैं, जुड़ाव के आलंकारिक वचन होते हैं, उनके अपने भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमा चिन्ह होते हैं तथा उनके घोषित आधिकारिक शत्रु और महानायक होते हैं। इस प्रकार का समुच्चयी आचार-संपुट फ्रांसीसी समाजशास्त्री पियरे बोर्दयू के शब्दों में हेबिटस का निर्माण करता है अर्थात् अभ्यासों का एक ऐसा सुयोजित मिश्रण जो आदत को आवास से जोड़ता है। कालांतर में सफल राष्ट्रवाद सत्य पर अपना पूरा कब्जा जमा लेते हैं और झूठ तथा निकृष्टता को बाहरी लोगों के मत्थे मढ़ देते हैं (उदाहरण के लिये पूंजीवादी बनाम साम्यवादी, योरोपीय बनाम एशियायी जैसे वक्तव्य)।

और 'हम' और 'बाहरी लोग' की सीमा के ठीक बाहर स्थिति है नान-बिलांगिग (बेघर बेनाम लोगों) का भयावह क्षेत्र। ऐसे ही स्थानों पर आदिम युगों में मनुष्यों को देश-निकाला देकर भेज दिया जाता था और आधुनिक समय में आज भी इस क्षेत्र में मानव जाति का एक बड़ा हिस्सा शरणार्थियों और बेदखल लोगों के रूप में अपना समय बिता रहा है।

राष्ट्रवादों का संबंध समूहों से होता है लेकिन एक अत्यधिक पीड़ादायक अर्थ में निर्वासन का अनुभव समूह के बाहर भोगा जाता है : सामुदायिक सहवास से कटकर जीने के लिये अभिशप्त वंचन की अनुभूति। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय अभिमान, सामूहिक भावना, समुदायजन्य भावातिरेकों की अपनी ओर खींचने वाली उद्बोधी भाषा में धंसे बिना कैसे कोई निर्वासन के अकेलेपन से निजात पा सकता है? एक ओर निर्वासन की स्थिति और दूसरी ओर राष्ट्रवाद की प्रायः रक्त-पिपासु अभिपुष्टियों के दो अतिवादी छोरों के बीच बचाने और जुड़े रहने लायक आखिर क्या होता है? क्या राष्ट्रवाद और निर्वासन के कुछ आभ्यान्तरिक गुण होते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि दोनों एक ही प्रकार की भ्रमात्मक स्थिति के दो अलग-अलग रूप होते हैं?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका पूरा जवाब कभी भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि प्रत्येक सवाल यह मानकर चलता है कि निर्वासन और राष्ट्रवाद पर बिना एक-दूसरे का जिक्र किये, तटस्थ अथवा निरपेक्ष बहस हो सकती है। लेकिन दोनों परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं। क्योंकि दोनों पक्षों में सामूहिक भावनाओं में से सर्वाधिक सामूहिक भावना और व्यक्तिगत संवेगों में से सर्वाधिक व्यक्तिगत संवेग एक-दूसरे में ग्रथित होते हैं, अतः दोनों के अनुकूल शायद ही कोई भाषा हो। लेकिन एक बात निश्चित है कि राष्ट्रवाद की सार्वजनिक और सर्वग्राही महत्वाकांक्षाओं में ऐसा कुछ भी नहीं होता जो निर्वासित व्यक्ति की दुर्दशा के क्रोड़ को छू सके।

राष्ट्रवाद के विपरीत, निर्वासन अस्तित्व की एक असतत अवस्था का नाम है। निर्वासित लोग अपनी जड़ों से, अपनी जमीनों से, अपने अतीतों से कटे हुये होते हैं। सामान्यतः उनका न तो कोई राज्य होता है और न ही कोई सेना हालांकि वे इन दोनों की तलाश में लगे रहते हैं। इसीलिये निर्वासित लोगों की तीव्र और तत्काल इच्छा होती है अपनी टूटी हुई जिन्दगियों को जोड़ने की और इस इच्छा के चलते वे प्रायः अपने को किसी विजयी विचारधारा अथवा पुनर्स्थापित जन-समूह के अंश के रूप में देखना पसंद करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह होती है कि इस प्रकार की विजयी विचारधारा के अभाव में निर्वासन की स्थिति वस्तुतः असह्य और आज की दुनिया में असंभव हो जाती है। विजयी विचारधारा निर्वासित व्यक्ति के खंडित इतिहास को एक नयी पूरकता अथवा पूर्णता देने के समान होती है। और इस संदर्भ में हम यहूदियों, फिलिस्तीनियों और आर्मेनियायियों की नियति को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं।

नाउबर अकेलेपन से जूझने वाले आर्मेनियायी हैं। वे मेरे मित्र भी हैं। उनके माता-पिता को 1915 में अपने परिवार के कत्लेआम के बाद तुर्की छोड़ना पड़ा था : उनके नाना का सिर काट लिया गया था। नाउबर के माता-पिता पहले तो अलेजो गये और फिर काहिरा आ गये। साठ के दशक के मध्य में गैर-मिस्रियों के साथ एक अन्तर्राष्ट्रीय सहायता संगठन द्वारा बेरुत लाये गये। बेरुत में कुछ दिनों तक वे पेन्शन पर गुजारा करते रहे और फिर उन्हें शहर के बाहर के एक मकान के दो कमरों में स्थानांतरित कर दिया गया। लेबनान में वे पैसे-पैसे के मुहताज थे लेकिन इंतजार करने के अलावा कुछ कर ही नहीं सकते थे। आठ महीने बाद एक अन्य

सहायता एजेन्सी ने उन्हें हवााई जहाज से ग्लासगो पहुँचाया, फिर वहाँ से गैण्डर और न्यूयार्क। न्यूयार्क से वे बस में यात्रा करते हुये सियेटल आ गये जहाँ एजेन्सी ने उनके अमरीका प्रवास के इंतजाम कर दिये थे। जब मैंने सियेटल का नाम कुछ आश्चर्य के साथ लिया तो नाउबर ने मुस्कराते हुये कहा कि आर्मेनिया न सही, सियेटल ही सही। आर्मेनिया जिसे उन्होंने कभी देखा ही नहीं था, तुर्की जहाँ इतने बड़े पैमाने पर लोगों की हत्यायें हुई थीं या फिर लेबनान जहाँ उनके परिवार को हमेशा डर के साथ रहना पड़ता। कभी-कभी जलावतनी घर में ही रहने अथवा घर से बाहर न निकल पाने से अच्छी होती है लेकिन बस कभी-कभी ही।

क्योंकि कुछ भी सुरक्षित नहीं है। निर्वासन एक चिन्तायुक्त स्थिति का नाम है। जो कुछ भी आप उपलब्ध करते हैं वह ठीक वही चीज होती है जिसे आप दूसरों के साथ बाँटना नहीं चाहते और अपने और अपने हमवतनों के चारों ओर रेखा खींचने के दौरान ही निर्वासन की स्थिति में होने के सर्वाधिक बदसूरत पहलू उभरकर सामने आते हैं। इसी समय पैदा होता है एकताबद्ध होने का एक अतिशयोक्तिपूर्ण अहसास और साथ ही बाहरी लोगों के प्रति अत्यधिक भावनापरक आक्रोश और इस आक्रोश की चपेट में वे लोग भी आ जाते हैं जो आप जैसी ही स्थिति के शिकार हुये होते हैं। यहूदीवादी यहूदियों और अरबी फिलिस्तीनियों के बीच चलने वाले संघर्ष से अधिक दुराग्रही और क्या चीज हो सकती है? फिलिस्तीनी समझते हैं कि वे अत्यधिक लोकप्रसिद्ध निर्वासितों द्वारा निर्वासित बना दिये गये हैं। लेकिन फिलिस्तीनी यह भी जानते हैं कि राष्ट्रीय पहचान का उनका अपना बोध निर्वासन की स्थिति में ही विकसित हुआ है जहाँ रक्त-संबंधियों को छोड़कर हर कोई उनका दुश्मन है, जहाँ उनसे हमदर्दी रखने वाला हर आदमी किसी शत्रु-शक्ति का एजेण्ट है और समूह की रिवायतों से जरा भी दाँये-बाँये जाने का मतलब होता है अधम कोटि का धोखा और विश्वासघात।

निर्वासन की नियति का यह सर्वाधिक असामान्य पक्ष है : निर्वासितों द्वारा निर्वासित किया जाना, निर्वासितों के हाथों जड़ों से उखाड़े जाने की वास्तविक प्रक्रिया को फिर से जीना। 1982 की गर्मियों में हर फिलिस्तीनी यही सवाल पूछ रहा था कि किस अव्यक्त इच्छा के चलते 1948 में फिलिस्तीनियों को बेदखल करने वाले इजराइल ने फिलिस्तीनियों को लेबनान में उनके शरणार्थी शिविरों से निष्कासित करना प्रारंभ कर दिया। ऐसा लगता है मानों पुनर्संरचित सामूहिक इजराइली अनुभव जिसका प्रतिनिधित्व इजराइल और आधुनिक यहूदीवाद करते हैं, अपने आस-पास बेघरपने और बेदखली की और किसी कहानी को सह ही नहीं सकता था। और यह एक ऐसी असहिष्णुता रही है जो फिलिस्तीनी राष्ट्रवाद के प्रति इजराइल की शत्रुता द्वारा लगातार पुष्ट होती रहती है। यह असहिष्णुता उन फिलिस्तीनियों के प्रति है जो अपनी पहली बेदखली के बाद से सारी पीड़ाओं और यातनाओं को झेलते हुये निर्वासन में एक राष्ट्रीय पहचान बनाने में जुटे हुये हैं।

निर्वासन से उपजी असततताओं और टूटनों के भीतर से पहचान बनाने की आवश्यकता की अभिव्यक्ति महमूद दरवेश की कविताओं में हुई है। इन कविताओं में वंचन के गीतों को घर वापसी के अनिश्चितकाल तक स्थगित नाटक में रूपांतरित करने के महाकाव्यात्मक प्रयास के दर्शन होते हैं। वे अपने बेघर होने के बोध को असमाप्त और अधूरी चीजों की एक सूची द्वारा व्यक्त करते हैं :

लेकिन मैं ही निर्वासित हूँ
अपनी आँखों से मुझे मुहरबंद कर दो
तुम जहाँ भी हो मुझे वहाँ ले चलो—
ले चलो मुझे जो कुछ भी तुम हो।
लौटा दो मुझे चेहरे का रंग
और देह की ऊष्मा
हृदय और आँख की रोशनी,
रोटी का नमक और लय
पृथ्वी का स्वाद .... मातृभूमि।
छिपा लो मुझे अपनी आँखों में।
उदासी की हवेली का अवशेष मानों मुझे
मेरी ट्रेजिडी की कुछ पंक्तियों के रूप में मुझे देखो
जानो मुझे एक खिलौने जैसा, घर की ईंट जैसा
ताकि हमारी संतानें घर लौटना याद रखें।

निर्वासन की करुणा पृथ्वी के पिण्ड से मिलने वाले संतोष के साथ सम्पर्क के टूट जाने में निहित होती है। घर वापसी नामुमकिन हो जाती है।

जोसेफ कॉनरेड की कहानी 'अमी फॉस्टर' निर्वासन पर लिखी गई सर्वाधिक समझौता-रहित कहानी है। कॉनरेड हमेशा अपने को पोलैण्ड से निर्वासित के रूप में सोचते थे और उनकी लगभग सारी रचनायें और साथ ही उनका अधिकांश जीवन भी इस बात का असंदिग्ध प्रमाण है कि संवेदनशील निर्वासित व्यक्ति अपनी नियति तथा नये वातावरण से संतोषजनक संपर्क बनाने के अपने असफल प्रयासों में किस प्रकार डूबा रहता है। 'अमी फॉस्टर' एक प्रकार से निर्वासन की समस्या पर ही केन्द्रित है, शायद इतना अधिक केन्द्रित कि कॉनरेड की चर्चित कहानियों में इसका उल्लेख बहुत कम किया जाता है। पूरी कहानी की कथावस्तु इसके केन्द्रीय चरित्र यांको गूराल की आप-बीती है जो एक पूवी-योरूप का किसान है और जो समुद्री रास्ते से अमरीका जाते हुये इंग्लैण्ड के समुद्र तट पर जहाज डूब जाने का शिकार हो जाता है :

> सचमुच ही बहुत मुश्किल होता है जब कोई आदमी अपने को एक खोया हुआ अजनबी, असहाय, समझ में न आ सकने वाला और अपनी जड़ों को हमेशा के लिये गंवा देने वाला व्यक्ति अपने को पृथ्वी के एक अनजाने कोने में पाता है। लेकिन दुनिया के किसी भी भाग में, जहाज के डूबने का शिकार होने वाले सारे साहसिकों में, मेरे विचार से, शायद ही कोई ऐसा रहा हो जो इतना बदनसीब रहा हो जितना यह आदमी जिसकी कहानी मैं कह रहा हूँ। समुद्र द्वारा अस्वीकार कर दिये गये साहसिकों में यह सबसे अधिक मासूम था।

यांको को अपना घर इसलिये छोड़ना पड़ा था क्योंकि वहाँ के दबावों के बीच रहना उसके लिये असंभव हो गया था। अमरीका अपने वादों से उसे ललचाता है। हालांकि वह पहुँच जाता है इंग्लैण्ड। इंग्लैण्ड में उसे बहुत

मुश्किलें होती हैं क्योंकि वह वहाँ की भाषा नहीं बोल सकता है और लोग उससे डरते हैं और वह गलतफहमियों का भी शिकार होता है। केवल अमी फॉस्टर ही जो मेहनती तो है लेकिन खूबसूरत नहीं उससे संवाद करने की कोशिश करती है। दोनों शादी कर लेते हैं, फिर उन्हें एक बच्चा होता है लेकिन जब यांको बीमार पड़ता है तो अमी उसकी देख-भाल करने से कतराती है। फिर एक दिन बच्चे को यांकों से छीनकर घर से चली जाती है। अमी के चले जाने से यांको का दुख बढ़ जाता है और वह तकलीफदेह मौत के निकट बहुत जल्दी पहुँच जाता है। यांको की मृत्यु को कॉनरेड बहुत विस्तार से चित्रित करते हैं जैसा कि वे अपने औपन्यासिक चरित्रों के साथ करते रहे हैं। इन बेघर चरित्रों की मृत्यु का कारण निपट अकेलेपन और दुनिया की उनके प्रति उदासी का मिला-जुला परिणाम होता है। यांको की नियति को 'अकेलेपन और निराशा की महाविपत्ति' के रूप में चित्रित किया गया है।

यांको की स्थिति बहुत विचलित करने वाली है : वह एक ऐसा विदेशी है जो एक अनजान दुनिया में नितांत अकेला और एक प्रकार की प्रेत-बाधा का सताया हुआ है। लेकिन अपने निर्वासन के चलते कॉनरेड ने यांको और अमी के अलगाव को काफी बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है। यांको फुर्तीला, छरहरा और चमकीली आँखों वाला है जबकि अमी थुलथुल, आलसी और बुद्धि से मंद है। यांको की मौत के समय कॉनरेड ऐसा आभास देते हैं कि यांको के प्रति अमी की शुरुआती हमदर्दी एक प्रकार का छल थी जिसमें यांको को उसने फंसा लिया। यांको की मौत को बड़े रोमांटिक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है : दुनिया बहुत ही बदसूरत है और किसी की प्रशंसा नहीं कर सकती : यांको को कोई भी समझ नहीं पाया, यहाँ तक कि उसके दिल के इतना करीब रहने वाली अमी भी नहीं। कॉनरेड ने यांको की निर्वासन-पीड़ा के आधार पर एक सौन्दर्यमूलक अथवा कलात्मक सिद्धांत ही गढ़ डाला। कॉनरेड का कथा-संसार एक प्रकार का अस्पष्ट, संवाद-शून्य संसार है और इसे विरोधाभास ही कहा जायेगा कि भाषा की संभावनाओं की यह आत्यंतिक सीमा संवाद स्थापित करने के लंबे-चौड़े प्रयासों को रोकती नहीं। कॉनरेड की सभी कहानियाँ अकेलेपन से जूझ रहे ऐसे लोगों की कहानियाँ हैं जो बातूनी तो हैं (सच बात तो यह है कि आधुनिकतावादी लेखकों में कॉनरेड इतना शब्दों के जादू में गिरफ्त और विशेषण-प्रेमी शायद ही कोई अन्य लेखक हो) लेकिन दूसरों को अपनी बातों से प्रभावित करने के उनके प्रयास उनके अकेलेपन के बोध को कम करने के बजाय और बढ़ा देते हैं। कॉनरेड का प्रत्येक निर्वासित चरित्र डरा हुआ होता है और यह कल्पना करने के लिये अभिशप्त कि उसकी मौत एक ऐसे अकेलेपन में होगी जहाँ संवेदना अथवा संवाद के लिये कोई गुंजाइश नहीं होगी। निर्वासित लोग अ-निर्वासित लोगों के प्रति विद्वेष का भाव रखते हैं क्योंकि अ-निर्वसित लोग अपने परिवेश से जुड़े हुये होते हैं जबकि निर्वासित व्यक्ति हमेशा बेघर और उखड़ा हुआ होता है। निर्वासित व्यक्ति लगातार सोचता रहता है किसी स्थान में पैदा होना, वहीं रहते रहना, अपने को उस स्थान से जोड़े रहने का अहसास बनाये रखना – यह सब कैसे होता है।

हालांकि यह सही है कि हर आदमी जो अपने घर लौटने से रोक दिया जाता है निर्वासित की ही श्रेणी में आयेगा लेकिन निर्वासितों, शरणार्थियों, प्रवासियों, उत्प्रवासियों के बीच कुछ अंतर किये जा सकते हैं। निर्वासन सदियों पुरानी देश-निकाला की दंड-पद्धति से जुड़ा हुआ है। देश-निकाले के बाद निर्वासित व्यक्ति एक अनियमित और दुखभरी जिंदगी जीता है जिसके ऊपर बाहरी होने का ठप्पा लगा रहता है। दूसरी ओर, शरणार्थी वस्तुतः बीसवीं सदी की राज्य व्यवस्था का परिणाम है। शरणार्थी शब्द के साथ राजनैतिक निहितार्थ

जुड़े हुये हैं और यह निर्दोष और चकित लोगों के ऐसे विशाल समूह का संकेत करता है जिन्हें तत्काल अंतराष्ट्रीय अनुदान की आवश्यकता होती है जबकि मेरे विचार से 'निर्वासन' शब्द में एक प्रकार के आत्मिक एकाकीपन का भाव छिपा हुआ है।

प्रवासी लोग वे होते हैं जो अधिकांशतः व्यक्तिगत अथवा सामाजिक कारण से अपनी इच्छा से किसी अजनबी देश में रहते हैं। हेमिंग्वे और फिट्ज़ेराल्ड को फ्रान्स में रहने के लिये मजबूर नहीं किया गया था। जहाँ तक एकाकीपन और टूटन की अनुभूति का सवाल है यह प्रवासियों और निर्वासितों में समान हो सकता है लेकिन प्रवासियों को निर्वासन के कठोर निषेधों को नहीं झेलना पड़ता है। उत्प्रवासियों की स्थिति बहुत साफ नहीं होती। तकनीकी अर्थ में कोई भी वह व्यक्ति जो किसी नये देश में जा बसता है उत्प्रवासी है। इसमें स्वेच्छित चुनाव की संभावना बनी रहती है। औपनिवेशिक अधिकारी, धर्मप्रचारक, तकनीकी विशेषज्ञ, भाड़े के सैनिक और ऋण पर बुलाये गये सैनिक सलाहकार भी एक अर्थ में निर्वासन की जिंदगी बिताते हैं लेकिन उन्हें देश-निकाले का दण्ड नहीं दिया गया है। अफ्रीका, एशिया के कुछ भागों और अफ्रीका में बसे हुये श्वेत लोग कभी निर्वासित हुये होंगे लेकिन आविष्कारकों और राष्ट्र-निर्माताओं के रूप में वे 'निर्वासित' के दाग से बच गये हैं।

निर्वासित व्यक्ति का अधिकांश समय एक ऐसी नई दुनिया सृजित करने में खर्च होता है जिसपर वह शासन कर सके और इस प्रकार वह अपने व्यग्रकारी क्षति के बोध की भरपाई करने का प्रयास करता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इतनी अधिक संख्या में निर्वासित लोग उपन्यासकार, शतरंज के खिलाड़ी, राजनैतिक कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी हो गये हैं। इस प्रकार के सारे उद्यमों में वस्तुओं में कम से कम निवेश और गतिशीलता और कौशल पर अधिक से अधिक ध्यान की आवश्यकता होती है। निर्वासितों द्वारा रचा गया नया संसार स्वाभावतः बनावटी होता है और इसकी अयथार्थता औपन्यासिक कथा से मिलती-जुलती है। अपनी पुस्तक थ्योरी आफ द नावेल में जार्ज लूकाच बहुत जोर देते हुए यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि महत्वाकांक्षा और काल्पनिकता के यथार्थ के भीतर से सृजित साहित्य-रूप उपन्यास वास्तव में 'इन्द्रियेतर गृहहीनता' (ट्रांन्सेन्डेन्टल होमलेसनेस) का साहित्य रूप है। लुकाच के अनुसार क्लासिकी महाकाव्यों का जन्म ऐसी सुस्थिर संस्कृतियों में होता है जिसके मूल्य स्पष्ट होते हैं, जिससे अस्मितायें स्थिर होती है और जहाँ जीवन गति में कोई परिवर्तन नहीं होता जबकि योरोपीय उपन्यास की जड़ें इसके ठीक विपरीत किस्म के अनुभव में हैं, यह एक ऐसे समाज का चित्र है जो लगातार बदल रहा है, जिसमें एक घुमक्कड़, सभी प्रकार के दायभाग से रहित मध्यवर्गीय नायक अथवा नायिका एक ऐसी दुनिया रचने के उपक्रम में लगे होते हैं जो हमेशा के लिये पीछे छूट गयी पुरानी दुनिया से थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती है। महाकाव्य में कोई 'वैकल्पिक' दुनिया नहीं होती; केवल एक दुनिया होती है जिसका अंतिमत्व स्पष्ट होता है। वर्षों तक यात्रा करते रहने के पश्चात यूलिसिस इथाका लौट आता है, अकिलीज की मृत्यु होगी क्योंकि वह अपनी नियति से बच नहीं सकता। लेकिन उपन्यास का अस्तित्व इसलिये होता है क्योंकि 'दूसरी' दुनियाओं का भी अस्तित्व संभव है जो मध्यवर्गीय सिद्धान्तकार, घुमक्कड़ और निर्वासित व्यक्ति के लिये विकल्प बन सकती हैं।

अपने जीवन में वे चाहे जितना सफल हो जायं निर्वासित लोग ऐसे सनकी व्यक्ति होते हैं जो दूसरे लोगों से अपनी भिन्नता को एक प्रकार के अनाथ होने की स्थिति मानते हैं। ऐसा कोई भी आदमी जो वास्तव में बेघर है

प्रत्येक आधुनिक चीज में अलगाव देखने की आदत को एक प्रकार का बनतूपना अथवा दिखावटीपना मानता है। भिन्नता को दृढ़ इच्छा से प्रयोग किये जाने वाले हथियार को हाथ में पकड़े हुये निर्वासित व्यक्ति जोर-शोर से किसी भी तरह के जुड़ाव से निर्बंध होने के अपने अधिकार पर आग्रह करता है।

इस प्रकार की मानसिकता एक ऐसे दुराग्रह में बदल जाती है जिसे आसानी से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। दुराग्रह, अतिशयोक्ति, अतिरंजना : निर्वासित होने के ये चारित्रिक लक्षण हैं; ये ऐसी युक्तियाँ हैं जिनके द्वारा आप दुनिया से अपनी बात मनवा सकते हैं जबकि हकीकत यह होती है कि आप अपनी बात को और अधिक अस्वीकरणीय बना देते हैं क्योंकि आप स्वयं नहीं चाहते कि आपकी बात स्वीकार कर ली जाय। अंततः यह आपकी अपनी और केवल अपनी बात होती है। संतुलन और सौम्यता निर्वासित व्यक्ति के कार्यो के साथ जोड़े जा सकने वाले अंतिम लक्षण हैं। निर्वासित कलाकार निश्चित रूप से अप्रिय होते हैं और उनकी अनमनीयता उनकी उदात्त कृतियों में भी अपनी जगह बना लेती है। द डिवाइन कॉमेडी में दांते की कल्पना अपनी सार्वभौमिकता और विस्तार के कारण अत्यधिक सशक्त है लेकिन 'पैराडाइसो' तक आते-आते जो स्वर्गिक शान्ति का भाव उत्पन्न होता है उसमें 'इनफर्नो' में रूपायित निर्णय की कठोरता और प्रतिशोधात्मकता के चिह्न मौजूद हैं। फ्लोरेंस से निर्वासित दांते ही शाश्वतता का इस्तेमाल प्रतिशोध स्थान के रूप में कर सकते थे। जेम्स ज्वाइस ने अपने लिये 'निर्वासन' का चुनाव स्वयं किया : ऐसा करके वे शायद अपनी कलात्मक क्षमता को और अधिक ऊर्जस्वी करना चाहते थे। जैसा कि उनके जीवनीकार रिचर्ड एलमन ने कहा है, बड़े ही रहस्यमय और प्रभावशाली ढंग से उन्होंने अपने देश आयरलैण्ड से झगड़ा मोल ले लिया और इस झगड़े को हमेशा जीवित रखा ताकि वे पूरी क्षमता से उस चीज का विरोध कर सके जो परिचित और सामान्य हो गयी थी। एलमन कहते हैं कि 'जब भी अपनी मातृभूमि से संबंध सुधरने का खतरा पैदा होता था तो कोई न कोई ऐसी घटना ज्वाइस के हाथ लग ही जाती थी जिससे उनकी नाराजगी और ठोस हो जाती थी और जो उनकी स्वेच्छित अनुपस्थिति को न्यायोचित ठहरा देती थी।' ज्वाइस का कथा-साहित्य, जिसे उन्होंने कभी 'अकेले और मित्रविहीन होने' की स्थिति कहा था, से जुड़ा हुआ है। और, हालांकि निर्वासन को एक जीवन-शैली के रूप में चुनने के उदाहरण अत्यन्त दुर्लभ है, ज्वाइस ने इसकी यातनाओं को बखूबी समझ लिया था।

लेकिन निर्वासित रचनाकार के रूप में ज्वाइस की सफलता एक सवाल भी उठाती है जो निर्वासन स्थिति की नाभि में स्थित है : क्या निर्वासन इतना आत्यंतिक और व्यक्तिगत होता है कि हथियार के रूप में इसका कोई भी इस्तेमाल अंततः इसे एक प्रकार से तुच्छ और सतही बना देता है? ऐसा क्यों हुआ है कि निर्वासन के साहित्य ने मानव-अनुभव के एक प्रतीक के रूप में साहसिकता, शिक्षा और खोज के साहित्य के बराबर अपना स्थान बना लिया है? क्या यह वही निर्वासन है जो अक्षरशः यांको गूराल की मृत्यु के लिये जिम्मेदार है और जिसने बीसवीं सदी के निर्वासन और राष्ट्रवाद के बीच व्ययसाध्य और प्रायः अमानवीय संबंध को जन्म दिया है? अथवा यह निर्वासन की कोई अधिक सौम्य अथवा भद्र प्रजाति है?

निर्वासन में समकालीन रुचि का अधिकांश कारण वह बीमार लगने वाली धारणा है एक उद्धारकारी मोटिफ के रूप में निर्वासन के लाभों का फायदा गैर-निर्वासितों को भी मिल सकता है। इस विचार में सत्यांश निश्चित रूप से है। मध्यकाल के चलते-फिरते रहने वाले विद्वानों अथवा रोमन साम्राज्य के पढ़े-लिखे यूनानी दासों की भाँति

निर्वासित लोग और विशेष रूप से असाधारण प्रतिभा वाले निर्वासित लोग अपने पर्यावरण को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं और स्वभावतः 'हम' अपने बीच 'उनकी' उपस्थिति के ज्ञानवर्द्धक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं न कि उनकी यातना और मांगों पर। लेकिन व्यापक स्तर पर होने वाले आधुनिक विस्थापनों को निराशाजनक राजनैतिक परिप्रेक्ष्य से देखने पर अलग-अलग निर्वासित लोग हमें एक अनिवार्यतः हृदयहीन दुनिया में बेघर होने की ट्रैजिक नियति को स्वीकार करने के लिये बाध्य करते हैं।

एक पीढ़ी पहले सिमों वील ने निर्वासन की समस्या को बड़े ही सटीक शब्दों में व्यक्त किया था : जड़ों से जुड़ा होना शायद मानवीय आत्मा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेकिन सर्वाधिक उपेक्षित आवश्यकता होती है। लेकिन वील को यह भी पता था कि विश्वयुद्धों, देश निकालों और व्यापक जनसंहारों के इस युग में जड़विहीनता से निजात देने वाले अधिकांश उपाय उतने ही खतरनाक हैं जितने कि वे घाव जिन पर ये उपाय मरहम लगाने की कोशिश कर रहे होते हैं। इन उपायों में, राज्य, अथवा कहना चाहें तो कह लें 'राज्यवाद', सर्वाधिक कपटपूर्ण उपाय है क्योंकि राज्य की पूजा अन्य सारे मानवीय संबंधों को दरकिनार कर देती है।

वील नये तरीके से निर्वासित व्यक्ति की नियति के केन्द्र के पास के दबावों और अवरोधों से हमारा परिचय कराती है। आधुनिक युग में ट्रैजेडी के सबसे अधिक निकट की कोई स्थिति यदि हो सकती है तो वह है निर्वासन की स्थिति। अकेलेपन और बेदखली के तथ्य हमें आँखें फाड़कर देख रहे हैं और यह एक प्रकार का आत्ममुग्ध परपीड़ावाद (मासोकिज्म) पैदा करता है जो सामुदायिकता, उत्संस्करण और सुधार के सारे प्रयासों को प्रतिरोधित करता है। इस आत्यंतिक बिन्दु तक आकर निर्वासित व्यक्ति निर्वासन को एक पवित्र प्रतीक में बदल लेता है जो एक ऐसी क्रिया होती है जो उसे सारे संबंधों और प्रतिबद्धताओं से दूर कर देती है। ऐसे जीना मानों आपके चारों ओर जो कुछ भी था वह नश्वर और क्षुद्र था, बदमिजाज सनक और झगड़ालू प्रेमहीनता का शिकार बन जाना होता है। और एक चीज जो बहुत प्रचलित होती जा रही है वह है निर्वासितों द्वारा दलों, राष्ट्रीय आन्दोलनों अथवा राज्य व्यवस्थाओं में शामिल होना। निर्वासित व्यक्ति को संबंधों का एक नया अनुक्रम परोस दिया जाता है और वह नई वफादारियाँ विकसित करने लगता है। लेकिन इसमें कुछ खो भी जाता है जैसे आलोची परिप्रेक्ष्य, बौद्धिक नियंत्रण और नैतिक साहस।

यह भी अवश्य ही जान लिया जाना चाहिये कि निर्वासित व्यक्ति का सुरक्षात्मक राष्ट्रवाद प्रायः आत्मज्ञान के साथ ही आत्म-विज्ञप्ति के कुछ कमतर आकर्षक रूपों को भी जन्म देता है। निर्वासन में राष्ट्र को पुनर्संयोजित करने जैसी प्रायोजना में (बीसवीं सदी में यह बात यहूदियों और फिलिस्तीनियों पर लागू होती है) एक राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण, किसी प्राचीन भाषा को पुनर्जीवित करना, पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों जैसे राष्ट्रीय संस्थाओं को खोलना जैसी चीजें निहित होती हैं। इसी प्रकार के प्रस्थान-बिन्दुओं से स्व की तलाश की प्रक्रिया शुरू होती है जो निश्चय ही 'जातीयता' जैसे सकारात्मक तथ्यों तक ही सीमित नहीं होती। उदाहरण के लिये किसी ऐसे व्यक्ति की आत्म-चेतना हो सकती है जो यह समझने की कोशिश कर रहा है कि क्यों यहूदियों और फिलिस्तीनियों के इतिहासों के अपने विशेष पैटर्न हैं, क्यों ऐसा होता है कि दमन और समूल विनाश की धमकियों के बावजूद कोई आचार-परंपरा निर्वासन में भी जीवित बची रहती है।

इस तरह यह जरूरी है कि मैं निर्वासन की बात विशेषाधिकार के रूप में न करके आधुनिक जीवन के ऊपर राज करने वाली जन संस्थाओं के विकल्प के रूप में करूँ। आखिरकार निर्वासन चुना नहीं जाता : आप पैदा ही इसी में होते हैं या यह आप को हो जाता है। लेकिन यदि निर्वासित व्यक्ति किनारे बैठकर अपने घाव को चाटने न लग जाय तो कुछ चीजें सीखने लायक होती हैं : उसे एक कर्त्तव्यनिष्ठ, न कि मुग्ध अथवा मनहूस, आत्मनिष्ठता सृजित करनी चाहिये।

इस प्रकार की सचेत और सटीक आत्मनिष्ठता का शायद सर्वाधिक अच्छा उदाहरण हमें जर्मन यहूदी दार्शनिक और आलोचक थियोदोर अडोर्नो के लेखन में मिलेगा। अडोर्नो की सफलतम रचना है मिनिमा मोरेलिया जो वास्तव में निर्वासन की अवधि में लिखी गयी उनकी आत्मकथा है। इसका उपशीर्षक 'क्षत-विक्षत जीवन से कुछ अनुचिंतन'। एडोर्नो जिसे 'प्रशासित' दुनिया कहते हैं उसके प्रति खुला विरोध व्यक्त करते हुये सम्पूर्ण जीवन को बने-बनाये रूपों, पहले से तैयार किये 'घरों' में ढला हुआ देखा था। उनका तर्क है कि हम जो कुछ भी सोचते अथवा करते हैं और साथ ही हर एक चीज जो हमारे पास होती है वह अंततः एक पण्य वस्तु होती है। भाषा तो बस अनाप-शनाप होती है, हर चीज बिकाऊ है। इस वस्तु-स्थिति को अस्वीकार करना निर्वासित का बौद्धिक धर्म होता है।

अडोर्नो के अनुचिंतनों से उनका यह विश्वास साफ झलकता है कि सचमुच में आज उपलब्ध घर केवल लेखन में है यद्यपि यह घर बहुत ही भुरभुरा और असुरक्षित होता है। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं 'घर अतीत हो चुका है। प्रौद्योगिकी के सर्वव्यापी विकास ने बहुत पहले ही निश्चय कर लिया था कि घरों का हश्र क्या होगा, अतः योरोपीय शहरों पर हुई बमबारी तथा उसके साथ ही श्रम शिविर और यातना शिविर जल्लादों के रूप में इसके पूर्वगामी भर थे। ये बस पुराने भोजन के डिब्बों जैसे रह गये हैं जिन्हें फेंक दिया जाना चाहिये।' संक्षेप में अडोर्नो एक गंभीर व्यंग्योक्ति के माध्यम से कहना चाहते हैं कि ''यह नैतिकता का तकाजा है कि हम अपने घरों में सुकून से न रहें।''

अडोर्नो का अनुकरण करने का मतलब होगा 'घर' से दूर रहना ताकि निर्वासित व्यक्ति की अनासक्ति के साथ 'घर' पर निगाह डाली जा सके। विभिन्न अवधारणाओं और विचारों तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं में असंगतियाँ ढूँढ़ने का अपना औचित्य होता है। हम घर और भाषा को बस मान लेते हैं, वे स्वभाव बन जाते हैं और उनमें अन्तर्निहित मान्यतायें मताग्रह और रुढ़ि में ढल जाती हैं।

निर्वासित व्यक्ति जानता है कि एक धर्मनिरपेक्ष और संभावी विश्व में घर हमेशा अस्थायी होते हैं। सीमायें और बेरियर जो हमें परिचित क्षेत्र की सुरक्षा के बाड़े में घेरे रहते हैं, बंदीगृहों में तब्दील हो सकते हैं जिनकी रक्षा में प्रायः तर्क अथवा आवश्यकता की सीमायें लांघ ली जाती हैं। निर्वासित व्यक्ति सीमाओं का अतिक्रमण करता है, विचार और अनुभव की घेरेबंदियों को तोड़ता है। बारहवीं सदी के एक ईसाई साधु, ह्यूगो आफ सेण्ट विक्टर, की ये पंक्तियाँ बरबस ध्यान खींचती हैं -

> अभ्यस्त मस्तिष्क के लिये यह महान स्रोत होता है यह सीखना कि पहले, थोड़ा-थोड़ा करके, वह अदृश्य और अस्थायी चीजों के बारे में अपने को बदले जिससे बाद में वह उनका पूरा परित्याग करने में सक्षम

> हो जाये। वह व्यक्ति जो अपने देश के माधुर्य को जानता है अभी एक मुलायम नौसिखिया है, और वह जिसके लिये हर मिट्टी अपनी ही लगती है पहले से ही मजबूत है, लेकिन पूर्णता उसने प्राप्त की है जिसे सारी दुनिया ही परदेश लगती है। मुलायम आत्मा ने दुनिया के एक स्थान पर अपनी आँख जमा रखी है; मजबूत आदमी सभी स्थानों तक अपने प्यार को फैला चुका होता है, पूर्ण व्यक्ति ने अपना प्यार बुझा दिया है।

बीसवीं सदी के महान साहित्यिक विद्वान इरिख आरबाख ने जिन्होंने युद्ध के वर्षों में तुर्की में निर्वासित जीवन बिताया था इस गद्यांश को एक ऐसे माडल के रूप में प्रस्तुत किया है जो हर उस आदमी के लिये उपयोगी है जो राष्ट्रीय अथवा प्रांतीय सीमाओं का अतिक्रमण करना चाहता है। ऐसे ही दृष्टिकोण को अपना आदर्श बनाकर कोई इतिहासकार मानवीय अनुभवों और इनके लिखित आलेखों को उनकी विविधता के साथ ही उनकी विशिष्टता भी समझ सकता है; अन्यथा वह केवल उन बहिष्करणों और पक्षपात की प्रतिक्रियाओं से ही बँधा रह जायेगा और उस स्वतंत्रता की अनदेखी कर जायेगा जो ज्ञान की सहयात्री होती है। लेकिन ध्यान रहे कि ह्यूगो इस बात को दो बार स्पष्ट करते हैं कि ‘सशक्त’ और ‘पूर्ण’ व्यक्ति आसक्तियों के बीच क्रियाशील होते हुये ही अनासक्ति और आजादी प्राप्त करता है न कि उन्हें नकारते हुये। निर्वासन आधारित होता है अपनी जन्मभूमि के अस्तित्व, उससे प्यार और उसके साथ बंधे होने पर। जो बात सभी निर्वासनों पर लागू होती है वह यह नहीं है कि घर और घर के प्रति प्यार खो जाता है बल्कि दोनों के ही अस्तित्व में खोने का भाव अन्तर्निहित होता है।

अनुभवों को ऐसा जानिये मानो वे खोने वाले हों। वह क्या है जो उन्हें यथार्थ से जोड़े रहता है? उनमें से आप क्या बचाना चाहेंगे और क्या आप त्यागना चाहेंगे? केवल वही व्यक्ति जिसने आजादी और अनासक्ति पा ली है, जिसकी गृह-भूमि ‘मधुर’ है लेकिन जिसकी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि वह उस मधुरता को दुबारा पा नहीं सकता, ऐसे सवालों का जवाब दे सकता है। (ऐसे आदमी के लिये भ्रम अथवा मताग्रह द्वारा उपलब्ध कराये गये स्थानापन्नों से संतुष्टि प्राप्त कर पाना असंभव होगा।)

इस सबसे ऐसा लग सकता है कि यह निदान दृष्टिकोण की कभी न कम हो सकने वाली निराशा के सामने मजबूर है और इसके साथ ही आत्मा की सारी प्रफुल्लता और सारे उत्साह का स्थायी और अवसादपूर्ण नकार ही समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। लेकिन ऐसा जरूरी नहीं। निर्वासन के सुख की बात करना शायद कुछ अटपटा लग सकता है लेकिन यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि इसकी स्थितियों में कुछ न कुछ सकारात्मक होता है। ‘पूरी दुनिया को विदेशी भूमि’ के रूप में देखना कल्पना की मौलिकता को संभव बनाता है। अधिकांश लोग, कम से कम सिद्धांत रूप में, एक देश, एक संस्कृति, एक घर को जानते हैं; निर्वासित लोग कम से कम दो देशों, दो संस्कृतियों, दो घरों को जानते हैं और कल्पनादृष्टि की यह बहुलता एक ही समय कई आयामों को जानने की संभावना खोल देती है- एक ऐसी जानकारी जिसे संगीत की शब्दावली में विवादी सुर कहा जा सकता है।

किसी भी निर्वासित व्यक्ति के लिये नये माहौल में जीवन की आदतें, अभिव्यक्ति अथवा क्रिया किसी अन्य माहौल में इन्हीं चीजों की स्मृतियों की पृष्ठभूमि में ही घटित होती हैं। इस प्रकार नये और पुराने माहौल सजीव, वास्तविक और सुरसंगति के साथ घटने-बढ़ने वाले होते हैं। इस प्रकार के बोध में एक विचित्र प्रकार का सुख

होता है, विशेष रूप से तब जब निर्वासित व्यक्ति ऐसे अन्य विवादी सन्निधानों के प्रति सचेत होता है जो रूढ़िग्रस्त निर्णयों को घटाता है तथा गुणग्राही सहानुभूति को उत्प्रेरित करता है। हम कहीं भी हों, ऐसा अभिनय करना कि हम अपने ही घर में है उपलब्धि के एक विशेष बोध का अनुभव होता है।

जो भी हो, स्थिति खतरों से खाली नहीं रहती : दुराव-छिपाव की आदत थकाने वाली भी होती है और बहुत ही तोड़ने वाली होती है। निर्वासन की स्थिति संतुष्टि, शान्ति और सुरक्षा की स्थिति नहीं होती। वालेस स्टीवेन्स के शब्दों में निर्वासन 'किसी जाड़े का दिमाग' होता है जिसे ग्रीष्म और पतझड़ की करुणा तथा वसंत की ऊर्जा नजदीक रहते हुये भी अप्राप्य होती है। शायद इसे ही इस तरह कहा जा सकता है कि निर्वासित व्यक्ति का जीवन किसी अन्य पंचांग के अनुसार चलता है और घर की जिन्दगी की तुलना में कम मौसमों वाला और कम स्थिर होता है। परिचित क्रम के बाहर जीवन जीना ही निर्वासन है। इसमें यायावरी, केन्द्रहीनता और विवादी सुरों का समूह होता है लेकिन जैसे ही आप निर्वासन के आदी होने लगते हैं वैसे ही इसकी बिखराव और विस्थापन की शक्ति का दुबारा विस्फोट हो जाता है।

Translated by
Prof. Ramkirti Shukla

'साखी' अंक 13-14 (जुलाई-दिसम्बर 2006) में पृष्ठ 312-327 पर प्रकाशित

इस लेख की सॉफ्ट कॉपी उपलब्ध कराने के लिये हम 'साखी' के संपादक प्रो.सदानन्द शाही के आभारी हैं